2013:CGHC;237(

**प्रकाशन हेतु अनुमोदित**

**छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय,बिलासपुर**

**माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत अभिहित न्यायाधीश:**

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय के. अग्रवाल

**माध्यस्थम् अपील क्रमांक 10/2011**

अपीलार्थी : मेसर्स साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड

बनाम

प्रत्यर्थीगण : मेसर्स बी.एस. अग्रवाल एवं एक अन्य

**माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 37 के तहत अपील**

---

**अधिवक्ताओं की उपस्थिति:**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अपीलार्थी की ओर से डॉ. एन.के. शुक्ला, वरिष्ठ अधिवक्ता सहित श्री ओम प्रकाश अग्रवाल, अधिवक्ता।

प्रत्यर्थी क्रमांक 1 की ओर से श्री राजेश कुमार जैन, अधिवक्ता।

प्रत्यर्थी क्रमांक 2 की ओर से नोटिस की तामिली के बावजूद कोई उपस्थित नहीं हुआ।

---

**मौखिक आदेश**

**(दिनांक 10 दिसंबर, 2013 को पारित)**

(1) माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद 'अधिनियम, 1996' के रूप में संदर्भित) की धारा 37 के तहत इस न्यायालय की अधिकारिता का आह्वान करते हुए, मेसर्स साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड ने दिनांक 13-12-2010 के आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील प्रस्तुत की है। उक्त आदेश के माध्यम से विद्वान जिला न्यायाधीश ने अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, दिनांक 1-12-2005 के अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया है और प्रकरण को मध्यस्थ को विवाद पर मध्यस्थता करने और विधि के अनुसार, उसके गुण दोष के आधार पर अधिनिर्णित किये जाने हेतु प्रतिप्रेषित किया है।

2013:CGHC;237(

(2) प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:

(2.1) पक्षकारों के बीच बिलासपुर में एक मल्टी-स्पेशियलिटी चिकित्सालय, अर्थात् 'अपोलो अस्पताल' के निर्माण के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ था। इसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी क्रमांक 1 (मेसर्स बी.एस. अग्रवाल) और अपीलार्थी मेसर्स साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड के बीच विवाद के निराकरण के लिए एकमात्र मध्यस्थ श्री एस.पी. माथुर (प्रत्यर्थी क्रमांक 2) की नियुक्ति की गई। यह विवाद दिनांक 18-1-1994 के कार्य आदेश और दिनांक 2-3-1994 के करार के तहत प्रत्यर्थी क्रमांक 1 को सौंपे गए कार्यों से संबंधित है।

**(2.2)** यहाँ प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष निम्नानुसार दावा प्रस्तुत किया :–

1. विस्तारित अवधि में किए गए कार्य हेतु प्रतिकर. कार्य का मूल्य 7.91 करोड़ रुपये से बढ़कर 10.45 करोड़ रुपये हो गया, जिससे कार्य की मात्राओं में असामान्य (32% से अधिक) विचलन हुआ। यद्यपि मूल्यवृद्धि का भुगतान किया गया, तथापि वह समस्त लागत एवं मदों को आच्छादित नहीं कर सका। मूल अवधि (जुलाई 1996 तक) में किए गए कार्य का मूल्य 7.54 करोड़ रुपये तथा विस्तारित अवधि (जुलाई 1996 से अगस्त 1997 तक) में 2.77 करोड़ रुपये था। विस्तारित अवधि के कार्य मूल्य का 10%, अर्थात लगभग 27.7 लाख रुपये, प्रतिकर के रूप में दावा किया गया है।
2. संविदा मूल्य का 10%, 30 माह के लिए उपरी व्यय के रूप में निर्धारित था, जो लगभग 2.64 लाख रुपये प्रति माह होता है। अतः विस्तारित अवधि के 13 माह हेतु लगभग 34.3 लाख रुपये उपरी व्यय के रूप में दावा किया गया है।
3. एस. ई. सी. एल. द्वारा, बी.एस.ए. के विरोध के बावजूद, अंतिम बिल में लगभग 8.8 लाख रुपये की राशि विद्युत शुल्क के रूप में काट ली गई, जिसे अब दावा किया गया है।
4. संविदा में सीमेंट के संबंध में मूल्यवृद्धि के भुगतान हेतु एक सूत्र निर्धारित था, किन्तु एस. ई. सी. एल. द्वारा कम भुगतान किया गया। अतः लगभग 82.2 लाख रूपये की शेष राशि का दावा किया गया है।
5. अतिरिक्त मदों एवं मात्राओं के भुगतान में विलंब हुआ। संबंधित राशि पर देय तिथि से वास्तविक भुगतान तिथि तक 18% वार्षिक ब्याज की गणना करते हुए लगभग 20.2 लाख रूपये प्रतिकर के रूप में दावा किया गया है।
6. कार्य पूर्ण होने के उपरांत दिनांक 31-08-1997 को 50% प्रतिभूति राशि (बैंक गारंटी के रूप में) तथा शेष राशि 6 माह पश्चात् दिनांक 28-02-1998 को एस. ई. सी. एल. द्वारा

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

मुक्त की जानी थी। उक्त के विरुद्ध बैंक कमीशन शुल्क के रूप में वहन किए गए अतिरिक्त व्यय हेतु लगभग 1.42 लाख रुपये का दावा किया गया है।

7. कार्य दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण हो गया, किन्तु भवन का अधिग्रहण नहीं किया गया, जिसके कारण सुरक्षा कर्मियों की नियुक्ति करनी पड़ी। इस मद में लगभग 10 लाख रूपये का दावा किया गया है। (सुरक्षा कर्मियों की पदस्थापना की अंतिम तिथि का उल्लेख नहीं है, तथापि एस. ई. सी. एल. को प्रेषित पत्र में इसे दिसंबर 1999 तक दर्शाया गया है।)

**(2.3)** यह दावा अन्य बातों के साथ इस कथन के आधार पर प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि कार्य दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण हो गया था तथा अंतिम बिल का भुगतान दिनांक 15-10-2001 को किया गया, तथापि उपर्युक्त राशि 18% वार्षिक ब्याज एवं व्यय सहित दावा की गई। एकमात्र मध्यस्थ द्वारा नोटिस दिए जाने पर अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. ने अपना जवाबदावा/दावा-पत्र प्रस्तुत करते हुए, अन्य बातों के साथ यह कहा कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 उक्त दावे का हकदार नहीं है। विशेष रूप से यह अभिव्यक्त किया गया कि दावे कालबाधित हैं, क्योंकि कार्य दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण हो चुका था, जबकि दावे जनवरी, 2002 में प्रस्तुत किए गए, अतः वे कालबाधित हैं। यह भी कहा गया कि अंतिम बिल का भुगतान प्रत्यर्थी क्रमांक 1 को पूर्व में ही कर दिया गया है तथा अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. के पक्ष में अदेय प्रमाण पत्र भी जारी किया जा चुका है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 किसी भी दावे का अधिकारी नहीं है और अतः दावा प्रथमदृष्टया कालबाधित होने के कारण तथा अन्यथा गुण-दोष के आधार पर भी, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा अभिलिखित संतुष्टि के कारण, खारिज किए जाने योग्य है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**(2.4)** एकमात्र मध्यस्थ ने अपने दिनांक 01-12-2005 के अधिनिर्णय द्वारा दावों को खारिज कर दिया, यह पाते हुए कि दावा क्रमांक 7 को छोड़कर शेष सभी दावे कालबाधित अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 18 के आलोक में कालबाधित हैं। द्वितीयतः, अंतिम बिल का भुगतान पूर्ण एवं अंतिम संतुष्टि के रूप में कर दिया गया है तथा दावाकर्ता द्वारा अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. के पक्ष में "अदेय प्रमाण पत्र" भी जारी किया जा चुका है, अतः दावों में कोई सार नहीं है।

**(2.5)** प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने एकमात्र मध्यस्थ द्वारा पारित अधिनिर्णय से असंतुष्ट होकर माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 34 के अंतर्गत अधिनिर्णय को खारिज किए जाने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया, यह कहते हुए कि मध्यस्थ द्वारा दावों को कालबाधित एवं गुण-दोष के आधार पर निरस्त करने का निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों एवं विधि के प्रतिकूल है, अतः अधिनिर्णय अपास्त किया जाना न्यायोचित है।

**(2.6)** माननीय जिला न्यायाधीश ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि दावाकर्ता द्वारा एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष प्रस्तुत दावे परिसीमा अवधि के भीतर हैं तथा "दावा न करने का/अदेय प्रमाण पत्र" का निर्गमन इस रूप में नहीं माना जा सकता कि वह दावे की पूर्ण एवं अंतिम संतुष्टि में जारी किया गया है। फलस्वरूप, प्रकरण को गुण-दोष के आधार पर विधि के अनुसार सुनवाई एवं निराकरण हेतु एकमात्र मध्यस्थ को प्रतिप्रेषित किया गया।

**(2.7)** माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 34 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते हुए जिला न्यायाधीश द्वारा अधिनिर्णय को अपास्त किए जाने के आदेश को चुनौती देते हुए, अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. द्वारा यह वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है।

**(3)** अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. एन. के. शुक्ला ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि माननीय जिला न्यायाधीश ने यह निर्धारित करते हुए विधिक त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत दावा कालबाधित नहीं हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा "दावा न करने का/अदेय प्रमाण पत्र" प्रदान किए जाने के पश्चात् दावाकर्ता ऐसे किसी दावे को प्रस्तुत करने का अधिकारी नहीं रह जाता, जैसा कि एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, और इस विषय पर जिला न्यायाधीश का निष्कर्ष विधि के प्रतिकूल है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**(4)** इसके विपरीत, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार जैन ने तर्क प्रस्तुत किया कि माननीय जिला न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतया उचित है कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत दावे परिसीमा अवधि के भीतर हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि कथित "कोई दावा न करने का प्रमाण पत्र" का निर्गमन प्रत्यर्थी क्रमांक 1 को एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष अतिरिक्त दावा प्रस्तुत करने से वंचित नहीं करता, और इस प्रकार माननीय जिला न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को विधिवत अपास्त कर प्रकरण को गुण-दोष के आधार पर पुनः विचार हेतु एकमात्र मध्यस्थ को प्रतिप्रेषित कर उचित कार्य किया है।

**(5)** मैंने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी तर्कों को सुना एवं विचार किया है तथा अभिलेख का अत्यंत सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है।

**(6)** पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तथ्यात्मक एवं विधिक निवेदनों के परिप्रेक्ष्य में, इस अपील में निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं:–

> **(1)** क्या एकमात्र मध्यस्थ द्वारा प्रत्यर्थी क्रमांक 1 के दावों को कालबाधित मानते हुए खारिज करना न्यायोचित है तथा क्या माननीय जिला न्यायाधीश द्वारा उन्हें परिसीमा के भीतर माना जाना उचित है?

**(2)** क्या एकमात्र मध्यस्थ द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्ष, जिसे जिला न्यायाधीश द्वारा पलट दिया गया, कि "कोई दावा न करने का प्रमाण पत्र" का निर्गमन प्रत्यर्थी क्रमांक 1 को आगे दावे प्रस्तुत करने से वंचित नहीं करता, न्यायसंगत एवं विधिसम्मत है?

**प्रथम प्रश्न का उत्तर :**

**(7)** पक्षकारों के मध्य विवाद का सम्यक् विवेचन करने हेतु, संबंधित संविदा से जुड़े सुसंगत तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। निर्विवाद रूप से, प्रश्नगत कार्य प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण किया गया तथा अंतिम बिल दिनांक 30-03-2001 को हस्ताक्षरित हुआ और उसका भुगतान दिनांक 15-10-2001 को किया गया। विवाद दिनांक 08-08-2001 को उत्पन्न हुआ तथा अंतिम दावा दिनांक 24-01-2001 को अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. के समक्ष प्रस्तुत किया गया। प्रत्यर्थी क्रमांक 1 के अनुसार, चूँकि अंतिम बिल दिनांक 30-03-2001 को हस्ताक्षरित हुआ, अतः 3 वर्ष की परिसीमा अवधि उसी तिथि से प्रारंभ होगी, और इस प्रकार जनवरी, 2002 में प्रस्तुत दावा कालबाधित नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत, अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. के अनुसार परिसीमा अधिनियम 1963 का अनुच्छेद 18 लागू होगा, और चूँकि प्रश्नगत कार्य दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण हो चुका था, अतः परिसीमा अवधि दिनांक 31-08-1997 से प्रारंभ मानी जाएगी। इस प्रकार, जनवरी, 2002 में प्रस्तुत दावा प्रत्यक्षतः एवं स्पष्ट रूप से कालबाधित है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**(8)** एकमात्र मध्यस्थ ने परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुसूची 18 का आश्रय लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दावा दिनांक 31-08-1997 से 3 वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित था, और इस आधार पर दावा क्रमांक 7 को छोड़कर शेष समस्त दावों को कालबाधित मानते हुए खारिज कर दिया।

**(9)** अपील में, माननीय जिला न्यायाधीश ने यह अभिलिखित किया कि यद्यपि अंतिम बिल दिनांक 30-03-2001 को तैयार किया गया था, तथापि उसका वास्तविक भुगतान दिनांक 15-10-2001 को किया गया। इसके उपरांत दिनांक 08-08-2001 को प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने अंतिम बिल के संबंध में एस. ई. सी. एल. के मुख्य अभियंता के समक्ष आपत्ति प्रस्तुत की। इस प्रकार, 3 वर्ष की परिसीमा अवधि दिनांक 08-08-2001 से गणना की जाएगी, और अतः प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत दावे परिसीमा अवधि के भीतर हैं।

**(10)** परिसीमा अधिनियम 1963 का अनुसूची 18 निम्नानुसार प्रावधान करता है:–

| | | | |
|---|---|---|---|
| **"18** | प्रतिवादी की प्रार्थना पर उसके निमित्त वादी द्वारा किए गए काम की कीमत के लिए जहां कि संदाय करने के लिए कोई समय नियत नहीं किया गया है। | तीन वर्ष | जब काम कर दिया जाए।" |

**11)** विधिक पारिभाषिकी में "कार्य एवं श्रम" एक निश्चित एवं विशिष्ट विधिक अभिप्राय वाला पद है। इंग्लैंड में यह वचन आधारित वादों में प्रयुक्त सामान्य दावों में से एक का नाम है, जो वादी द्वारा प्रत्यर्थी के लिए किए गए कार्य एवं उपलब्ध कराई गई सामग्री के प्रतिफल से संबंधित होता है; देखें: ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, पृष्ठ 1604। भारत में न्यायालयों ने, इस प्रकार, अनुसूची 18 में प्रयुक्त "निष्पादित कार्य" शब्दों को व्यापक अर्थ प्रदान किया है तथा कार्य संविदा को भी इसके परिधि में सम्मिलित माना है। तथापि, प्रत्येक प्रकरण में परिसीमा की प्रारंभिक तिथि का निर्धारण उसके अपने तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

**(12)** हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड, खंड 24, पृष्ठ 218 में "निष्पादित कार्य" अभिव्यक्ति का अर्थ निम्नानुसार दिया गया है:–

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "सामान्यतः, किसी कार्य के निष्पादन हेतु किए गए संविदा में, वाद हेतुक उस समय उत्पन्न होता है जब कार्य पूर्ण कर लिया जाता है। तथापि, कार्य करने के संविदा में ऐसी शर्त भी हो सकती है कि मूल्य का भुगतान किसी निश्चित घटना के घटित होने पर ही किया जाएगा, और ऐसी स्थिति में वाद हेतुक उस घटना के घटित होने तक उत्पन्न नहीं होता।"

**13) गैनन डंकरले एंड कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ**[1] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :–

> "11. ..... हमारे मत में, जब तक वाद में प्रतिपादित अधिकार प्रोद्भूत नहीं होता तथा उसका उल्लंघन नहीं होता, अथवा कम-से-कम प्रत्यर्थी द्वारा उस अधिकार के उल्लंघन की स्पष्ट एवं असंदिग्ध आशंका उत्पन्न नहीं होती, तब तक वाद दायर करने का कोई अधिकार उत्पन्न नहीं होता; देखें – बोलो बनाम कोकन एवं अन्य, 57 आईए 325।"

**(14) मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण**[2] में, परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 137 की प्रयोज्यता पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :–

---

1 1969 (3) SCC 607
2 (1988) SCC 338

> "यह भी सत्य है कि कार्य की पूर्णता पर सामान्यतः भुगतान प्राप्त करने का अधिकार उत्पन्न होता है, किन्तु जहाँ, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में अभिलेख से परिलक्षित होता है, अंतिम बिल तैयार नहीं किए गए थे, और जब 28 फरवरी 1983 को दावा प्रस्तुत किया गया तथा भुगतान नहीं किया गया, तब वाद हेतुक उसी तिथि से अर्थात् 28 फरवरी 1983 से उत्पन्न हुआ।
>
> यह भी सत्य है कि कोई पक्ष केवल स्मरण पत्र भेजकर वाद हेतुक के उद्भव को स्थगित नहीं कर सकता; तथापि, जहाँ अंतिम बिल विधिवत् तैयार नहीं किया गया हो, वहाँ दावाकर्ता द्वारा किया गया दावा ही वाद हेतुक के उद्भव का आधार बनता है।"

**(15) नेशनल एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम जी.सी. कानूनगो**[3] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. अन्य शब्दों में, प्रकरण में अंतिमता नहीं आई थी और वह विचाराधीन बना हुआ था। यदि इस तिथि अर्थात् 26-05-1992 को ध्यान में रखा जाए, तो प्रस्तुत दावा तीन वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया गया था। अतः, दावा परिसीमा के भीतर था और अपीलार्थी का यह अभिमत कि दावा कालबाधित है, स्वीकार्य नहीं है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**(16)** वर्तमान प्रकरण में भी, कार्य दिनांक 31-08-1997 को पूर्ण हुआ, अंतिम बिल दिनांक 30-03-2001 को तैयार किया गया तथा वास्तविक भुगतान दिनांक 15-10-2001 को किया गया। दिनांक 08-08-2001 को प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने एस. ई. सी. एल. के मुख्य अभियंता के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, किन्तु अपीलार्थी/एस. ई. सी. एल. की ओर से कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं हुआ, जिसके फलस्वरूप दिनांक 24-01-2002 को एस. ई. सी. एल. के समक्ष दावा प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार, उपर्युक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को लागू करने पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा किया गया दावा कालबाधित था।

**(17)** इसके अतिरिक्त, यह विधि द्वारा सुस्थापित सिद्धांत है कि परिसीमा का प्रश्न विधि एवं तथ्य का मिश्रित प्रश्न है, और इसका निर्णय उचित अभिवचन तथा साक्ष्य के अभाव में नहीं किया जा सकता।

**(18) बालासरिया कंस्ट्रक्शन (पी) लिमिटेड बनाम हनुमान सेवा ट्रस्ट एवं अन्य**[4] में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा का प्रश्न विधि एवं तथ्य का मिश्रित प्रश्न है, जो निम्नानुसार है :–

---

3 AIR 2009 SC 2928
4 (2006) 5 SCC 658

> "8. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने, वादपत्र, सि.प्र.सं. 1908 के आदेश 7 नियम 11(घ) के अंतर्गत आवेदन तथा विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्णयों का अवलोकन करने के उपरांत, हम इस मत के हैं कि वर्तमान वाद को उचित अभिवचन, परिसीमा संबंधी विवाद्यक के निर्धारण तथा उस पर साक्ष्य ग्रहण किए बिना, कालबाधित मानकर खारिज नहीं किया जा सकता था। परिसीमा का प्रश्न विधि एवं तथ्य का मिश्रित प्रश्न है। प्रथमदृष्टया, वादपत्र के अवलोकन से यह नहीं कहा जा सकता कि वाद कालबाधित है। विवाद के गुण-दोष से संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अपास्त किए जाते हैं, किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है। हम विचारण न्यायालय के इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि वादपत्र को सि.प्र.सं. 1908 के आदेश 7 नियम 11(घ) के अंतर्गत अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

**(19) मेसर्स अशोक कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम भारत संघ**[5] में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा का प्रश्न शुद्ध विधिक प्रश्न नहीं है। प्रतिवेदन के कंडिका 8 में निम्नानुसार कहा गया है :-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "8. परिसीमा का प्रश्न शुद्ध विधिक प्रश्न नहीं था। यह कि दावा परिसीमा विधि से वर्जित है या नहीं, तथ्यों के प्रमाण पर निर्भर करता है। दावों के निराकरण की तिथि से, संदर्भ हेतु नोटिस दिए जाने तक तीन वर्ष की अवधि व्यतीत नहीं हुई थी। प्रथमदृष्टया, दावा परिसीमा विधि से वर्जित नहीं था।"

**(20)** अतः, उपर्युक्त तथ्यों एवं पूर्वोक्त कारणों के आलोक में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत दावे कालबाधित थे। फलस्वरूप, एकमात्र मध्यस्थ द्वारा परिसीमा के प्रश्न को प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में, बिना साक्ष्य ग्रहण/अभिलेखित किए, निर्णीत करना विधि-विरुद्ध था, जिसे माननीय जिला न्यायाधीश द्वारा विधिवत अपास्त कर दिया गया तथा प्रकरण को गुण-दोष के आधार पर विधि के अनुसार निर्णय हेतु एकमात्र मध्यस्थ को प्रतिप्रेषित करना उचित था। मैं उक्त निष्कर्ष की पुष्टि करता हूँ। प्रथम प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

**द्वितीय प्रश्न का उत्तर :**

**(21)** यह प्रश्न कि क्या प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा "कोई दावा न करने का प्रमाण पत्र" अथवा "अदेय प्रमाण पत्र" जारी किए जाने से वह आगे दावा प्रस्तुत करने से वंचित हो जाएगा, अब अनिर्णित विषय नहीं रहा है, अपितु माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा इसका निराकरण किया जा चुका

5 1971 (3) SCC 66

है। **अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, एनटीपीसी लि. बनाम रेशमी कंस्ट्रक्शंस बिल्डर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स**[6] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि सामान्यतः सार्वजनिक उपक्रम संविदात्मक प्रकरणों में प्रभुत्व की स्थिति में होते हैं और वे तब तक भुगतान निर्गत नहीं करते जब तक "कोई दावा न करने का प्रमाण पत्र" पर हस्ताक्षर न करवा लिए जाएँ। इसी प्रकार, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोगहारा पॉलीफैब**[7] प्राइवेट लिमिटेड में भी समान विधिक सिद्धांत अभिनिर्धारित किया गया है, जो निम्नानुसार है :–

> "49. शासकीय विभागों एवं निगमित क्षेत्र द्वारा नियमित/दैनिक भुगतानों के संबंध में पूर्व-प्राप्ति के रूप में बिना दिनांकित रसीदें प्राप्त करना एक स्वीकृत प्रथा है, जो प्रशासनिक आवश्यकताओं एवं लेखांकन की जरूरतों के कारण प्रचलन में आ चुकी है। बिना दिनांक के वाउचर/रसीद पर बल देने का कारण यह है कि ऐसी रसीद के निष्पादन की तिथि पर वास्तविक भुगतान नहीं किया जाता, बल्कि भुगतान भविष्य में, रसीद प्राप्त करने के काफी समय पश्चात किया जाता है। यदि रसीद में निष्पादन की तिथि अंकित कर दी जाए और भुगतान काफी बाद में किया जाए, तो वह रसीद, जिसमें राशि को पूर्व तिथि पर प्राप्त दर्शाया गया हो, निरर्थक एवं अव्यावहारिक प्रतीत होगी। अतः, बिना दिनांक की रसीदें इस उद्देश्य से ली जाती हैं कि बाद में उपयुक्त तिथि अंकित कर उन्हें आगामी भुगतानों के लिए प्रयुक्त किया जा सके। तथापि, अनेक बार मामलों को इतनी लापरवाही से निर्धारिज किया जाता है कि भुगतान किए जाने के पश्चात भी तिथि अंकित नहीं की जाती। जो बात चिंता का विषय है, वह यह है कि कुछ शासकीय विभाग, सांविधिक निगम एवं शासकीय कंपनियाँ प्रायः इस बात पर बल देती हैं कि "अदेय प्रमाणपत्र" अथवा "पूर्ण एवं अंतिम निर्धारण वाउचर" बिना दिनांक के जारी किए जाएँ, जिनमें दावाकर्ता द्वारा अपनी वास्तविक दावे की राशि से कम राशि को पूर्ण एवं अंतिम निर्धारण के रूप में प्राप्त होना स्वीकार किया जाता है, और इसे स्वीकृत देय राशि के भुगतान हेतु पूर्व शर्त बना दिया जाता है। ऐसी प्रक्रिया, जिसमें दावाकर्ता को स्वीकृत कम राशि के निर्गमन के लिए, अपने अधिक दावे के विरुद्ध कम राशि की प्राप्ति को पूर्ण एवं अंतिम निर्धारण के रूप में स्वीकार करते हुए बिना दिनांक की रसीद जारी करने के लिए बाध्य किया जाता है, अन्यायपूर्ण, अनियमित तथा अवैध है और इसकी निंदा की जानी चाहिए।"

**(22)** आर.एल. कलाथिया एंड कंपनी बनाम गुजरात राज्य[8] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिलिखित किया :–

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

6 AIR 2004 SC 1330
7 (2009) 1 SCC 267
8 (2011) 2 SCC 400

"12. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोगहारा पॉलीफैब प्रा. लि.., (2009) 1 एससीसी 267** में यह प्रश्न विचाराधीन था कि क्या बीमित द्वारा बीमाकर्ता को 'पूर्ण एवं अंतिम उन्मोचन वाउचर' प्रदान करने के पश्चात् उत्पन्न विवाद को माध्यस्थम् हेतु संदर्भित किया जा सकता है। एससीसी कंडिका 26 में दिया गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत है:–

'26. जब हम संविदा के निर्वहन की बात करते हैं, जो दोनों पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित किसी करार या किसी एक पक्ष द्वारा पूर्ण एवं अंतिम उन्मोचन वाउचर/रसीद के निष्पादन के माध्यम से होता है, तो हमारा अभिप्राय ऐसे करार या उन्मोचन वाउचर से है जो विधिपूर्वक एवं स्वेच्छा से निष्पादित किया गया हो। यदि वह पक्ष, जिसने उक्त उन्मोचित करार या वाउचर निष्पादित किया है, यह आरोप लगाता है कि उसका निष्पादन छलपूर्वक/बलप्रयोग/अनुचित प्रभाव के कारण हुआ है और वह इसे सिद्ध कर देता है, तो स्पष्टतः ऐसा उन्मोचित करार/वाउचर अमान्य हो जाता है और उस पर अमल नहीं किया जा सकता। परिणामतः, ऐसे पक्ष द्वारा उठाया गया कोई भी विवाद माध्यस्थम् योग्य होगा।'

**(13)** उपर्युक्त निष्कर्षों से निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित होते हैं :–

(i) केवल इस कारण कि ठेकेदार द्वारा "अदेय प्रमाणपत्र" जारी किया गया है, यदि कोई स्वीकार्य दावा विद्यमान है, तो न्यायालय उसे केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं कर सकता।

(ii) यह सर्वविदित है कि जब तक ठेकेदार द्वारा अग्रिम रूप से उन्मोचन प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया जाता, तब तक प्रायः बिलों का भुगतान विलंबित किया जाता है। अतः संविदा में ऐसी शर्त ठेकेदार को बाद में वास्तविक दावे प्रस्तुत करने से पूर्णतः वंचित नहीं करती, भले ही उसने "अदेय प्रमाणपत्र" प्रस्तुत कर दिया हो।

(iii) किसी पक्ष द्वारा पूर्ण एवं अंतिम उन्मोचन वाउचर/रसीद निष्पादित करने के पश्चात् भी, यदि वह यह सिद्ध कर देता है कि वह अतिरिक्त राशि का अधिकारी है तथा उसके पास पर्याप्त साक्ष्य/सामग्री उपलब्ध है, तो मात्र "अदेय प्रमाणपत्र" जारी करने अथवा अंतिम बिल को "बिना किसी पूर्वाग्रह के" उल्लेख करते हुए स्वीकार करने के आधार पर उसे ऐसे दावे करने से वंचित नहीं किया जा सकता।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**23)** विधिक स्थिति का निर्धारण करने के उपरांत, अब मैं वर्तमान प्रकरण के तथ्यों की ओर लौटता हूँ। यह तथ्य निर्विवाद है कि अंतिम बिल दिनांक 30-03-2001 को हस्ताक्षरित किया गया, किन्तु तत्पश्चात् तत्काल, दिनांक 08-08-2001 को प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने एस. ई. सी. एल. के मुख्य अभियंता के समक्ष एक विशिष्ट आपत्ति प्रस्तुत की, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया कि अंतिम बिल को उसके

2013:CGHC;237(

दावों की पूर्ण एवं अंतिम संतुष्टि के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, तथा धन की आवश्यकता के कारण वह (प्रत्यर्थी क्रमांक 1) भुगतान प्राप्त कर रहा है। अतः, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा की गई उक्त विशिष्ट आपत्ति तथा इस पत्र का प्रत्याख्यान अन्य पक्ष द्वारा न किए जाने के परिप्रेक्ष्य में, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने उक्त राशि अपने दावों की पूर्ण एवं अंतिम संतुष्टि के रूप में प्राप्त की है। परिणामतः, दिनांक 08-08-2001 के उक्त पत्र में उल्लिखित "कोई दावा न करने का प्रमाण पत्र" को इस रूप में नहीं माना जा सकता कि वह दावों की पूर्ण एवं अंतिम संतुष्टि के प्रतीक के रूप में हस्ताक्षरित किया गया था। फलस्वरूप, माननीय जिला न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि समझौता एवं तुष्टि स्थापित नहीं हुई है तथा प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत दावे विचारणीय हैं, पूर्णतः उचित एवं विधिसम्मत है। इस प्रकार, द्वितीय प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

**(24)** परिणामस्वरूप, प्रस्तुत अपील में कोई सार नहीं है; अतः यह खारिज किये जाने योग्य है, तदनुसार खारिज किये जाते है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

**सही/-**
**संजय के अग्रवाल**
**न्यायाधीश**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

**अस्वीकरणः** हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

**Translated By .....** Vijay Kumar Sahu, Advocate